# स्त्री अस्मिता

## साहित्य और विचारधारा

(खण्ड 3: विचारधारा)

जगदीश्वर चतुर्वेदी

सुधा सिंह

# स्त्री-अस्मिता

# साहित्य और विचारधारा

## खण्ड-3

**संपादन**

**जगदीश्वर चतुर्वेदी**

**सुधा सिंह**

# अनुक्रम

## विचारधारा


| | | |
|---|---|---|
| प्रभा खेतान | स्त्री-विमर्श के अंतर्विरोध | 6 |
| जगदीश्वर चतुर्वेदी | स्त्री-विमर्श के नए आयाम | 66 |
| क्षमा शर्मा | मनुवाद तालिबानों का  घोषणापत्र | 82 |
| जगदीश्वर चतुर्वेदी | कामुकता और जनमाध्यम | 99 |
| शारदा | दहेज-प्रथा और स्त्री-दासता | 142 |
| सरस्वती हैदर | भारत की राष्ट्रीय महिला-नीति-1996 | 169 |
| दीपान्विता माजि | महिला आंदोलन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के प्रमुख बिंदु | 198 |

# भूमिका

आज सारी दुनिया में स्त्री की पहचान की जद्दोजहद ध्रुवीकरण की शक्ल ग्रहण कर चुकी है। स्त्री की अस्मिता को केंद्र में लाने का श्रेय महिला आंदोलन और दृश्य माध्यमों को जाता है। महिला आंदोलन के संघर्षो और कुर्बानियों का ही नतीजा है कि स्त्रियाँ आज गर्व के साथ अपने हक की लड़ाई लंड रही हैं। एक ज़माना था स्त्रियाँ चुप थीं। आज स्त्री ने चुप्पी तोड़ने का बीड़ा उठा लिया है। बल्कि यों कहें कि स्त्रियों को चुप रखने वालों की विदाई की वेला आ गई है। स्त्री-अस्मिता के संघर्ष को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है कि स्त्रियाँ बोलें, लिखें और एक मनुष्य और स्त्री के रूप में अपनी स्थिति को जानें, उसे बदले और नए विकल्पों का निर्माण करें।

भारतीय समाज में आज भी अधिकांश स्त्रियाँ पराधीनता में जी रही हैं। कहने को उन्हें संवैधानिक तौर पर अनेक अधिकार मिल चुके हैं। किंतु स्त्री की वास्तविक दुनिया अभी भी कैद और बंदिशों से घिरी है। स्त्री-अस्मिता को जानने की पहली शर्त है कि उन स्थितियों को जाने जिनमें स्की कैद है। स्त्री को कैद से मुक्ति दिलाने के लिए सिर्फ सहानुभूति से काम चलने वाला नहीं है। इसके लिए व्यवहारिक और अकादमिक दोनों ही स्तरों पर जंग लड़ी जानी चाहिए। जो लोग सोचते हैं कि सिर्फ आदोलन करके जंग जीती जा सकती है, वे गलत सोचते हैं। स्त्री की मुक्ति के लिए पढ़ाई और लड़ाई का एक साथ चलना बेहद जरूरी है। स्त्री की जंग जब तक वैचारिक स्तर पर नहीं जीती जाती तब तक स्त्री-मुक्ति का सपना साकार नहीं होगा। इस दिशा में यह लेख संग्रह एक छोटा प्रयास है।

आज हमारा समाज परवर्ती पूँजीवाद की अवस्था में पहुँच चुका है। स्त्रियों के लिए यह अवस्था सबसे ज्यादा खतरनाक और बर्बर है। मानव सभ्यता के विकास के क्रम में स्त्री-बर्बरता के

जितने भी मानक रचे गए थे, वे सब टूट रहे हैं। आज उनकी जगह ज्यादा बर्बर रूपों ने ले ली है। आज सभ्यता के मानक भी तेजी से टूट रहे हैं। सभ्यता के मानक जब भी टूटते हैं स्त्रियों को नई विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। यही वजह है कि हमें सभ्यता को बचाने की जंग के साथ स्त्री के संघर्षो को जोड़ना होगा। परवर्ती पूँजीवाद को पूँजीवाद की नग्न तानाशाही कह सकते हैं। पूँजी के नग्नतम और क्रूर हाथों से जिन दो समूहों को सबसे ज्यादा तबाही का सामना करना पड़ रहा है उनमें पहले स्त्रियां हैं और दूसरे नंबर पर मजदूर वर्ग है। परवर्ती पूँजीवाद इन दोनों समूहों-वर्गो की अब तक की समस्त उपलब्धियों को नष्ट करने पर आमादा है। स्त्री-अस्मिता की जंग का पहला स्तर है स्त्री-आंदोलन और स्त्री जाति की अब तक की उपलब्धियों की हर कीमत पर रक्षा करना, इनका विस्तार करना। साथ ही स्त्री अस्मिता के नए मसलों, सवालों को स्त्री-आंदोलन और वैचारिक संघर्ष के केंद्र में लाना।

परवर्ती पूँजीवाद स्त्री की जिन इमेजों का प्रक्षेपण करता है वे सब आभासी स्त्री की इमेज हैं। अति-वास्तविक इमेज हैं। इन इमेजों के माध्यम से स्त्री के वास्तव जगत का अंदाजा नहीं लगता। स्त्री की अति-वास्तविक इमेजों का ज्यादा-से-ज्यादा संप्रेषण इस बात का द्योतक है कि स्त्री जाति गंभीर संकट में है। स्त्री की किताबी या आभासी इमेजों का इस्तेमाल अमूमन स्त्री के मसलों से ध्यान हटाने के लिए किया जाता है।दूसरी ओर, इन इमेजों के माध्यम से स्त्रियों में स्वयं के प्रति घृणा और हेयभाव पैदा होता है। इस हेयभाव से मुक्ति के जितने भी फार्मूले परवर्ती पूँजीवाद सुझा रहा है वे सब स्त्री-मुक्ति के प्रयासों को और भी मुश्किल बना रहे हैं। स्त्री-अस्मिता के संघर्ष की जरूरत है कि स्त्रियाँ स्वयं से नफरत करना बंद करें। गुलामी के उपकरणों और भावबोध से मुक्त करें।

स्त्री-अस्मिता पर विचार करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि स्त्री के अनेक सामाजिक स्तर होने के बावजूद उसका लैंगिक स्तर अंतत: निर्णायक भूमिका अदा करता है। स्त्री के सवाल लैंगिक आधार पर ही हल किए जा सकते हैं। स्त्री मनुष्य होने के साथ लिंग भी है।

ऐतिहासिक विकास के क्रम में उसका मनुष्यभाव खत्म किया जा चुका है। अब उसके पास अपनी पहचान का एकमात्र आधार लिंग है। लिंग को त्यागकर स्त्री की अस्मिता की स्वीकृति संभव नहीं है। लिंग के रूप में स्त्री की सामाजिक अवस्था का सटीक ज्ञान और सही समझ ही स्त्री-अस्मिता को स्वीकृति दिला सकती है। भारत में परवर्ती पूँजीवाद और सामंती विचारधारा का पितृसत्ता के रूप में वैचारिक मोर्चा बना हुआ है। इसके खिलाफ अनवरत, समझौताहीन संघर्ष ही स्त्री-अस्मिता का निर्माण कर सकता है। स्त्री-अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया का स्त्री-साहित्य के विकास और परंपरा से गहरा संबंध है।

प्रस्तुत पुस्तक के पहले खंड में स्त्री-अस्मिता के विभिन्न पक्षों और स्त्री की सामाजिक अवस्था का हिंदी के प्रख्यात लेखकों द्वारा समय-समय पर किया गया विश्लेषण शामिल किया गया है। दूसरे खंड में स्त्री-साहित्य से जुड़े सवालों जैसे स्त्री-साहित्य की अवधारणा, स्त्री साहित्य का इतिहास, स्त्री कथा-साहित्य, पितृसत्तात्मकता की धारणा के तहत संस्कृत के स्त्री साहित्य, स्त्री भाषा आदि विषयों का विवेचन किया गया है। तीसरे खंड में स्त्री के समसामयिक ज्वलंत सवालों जैसे दहेज प्रथा, महिला आरक्षण, स्त्रियों के प्रति तत्ववादी दृष्टिकोण महिला आंदोलन और स्त्री-विमर्श के अंतविरोधों पर रोशनी डाली गई है।

यह पुस्तक हिंदी साहित्य और स्त्री-विषयक अध्येताओं के लिए मूलत: दस्तावेज के रूप में तैयार की गई है। आशा है सुधी पाठकों को पुस्तक पसंद आएगी।

**जगदीश्वर चतुर्वेदी**

**सुधा सिंह**

# स्त्री-विमर्श के अंतर्विरोध

**प्रभा खेतान**

तात्कालिक घटना यदि मनोनुकूल न हो तो उसकी आलोचना करना, उसके महत्त्व को कम करके आँकना व्यक्ति-मानस की सबसे सहज प्रवृत्ति है। लेकिन इसमें अंतर्निहित जोखिम है। किसी ऐसे काल्पनिक स्वर्ण युग की ओर लौटने की मानसिकता उसे संभव सिद्ध करने की कोशिशें यह जानते हुए कि ऐसा स्वर्ण युग साधारण जन को कभी उपलब्ध था ही नहीं, महज कुछ विशिष्ट और चुनी हुई औरतों की चर्चा करके पुरुष अपने आधिपत्य एवं वर्चस्व की आदिम वृत्ति से उत्पन्न गहरे अपराध-बोध से क्षणिक राहत जरूर खोजता है।

अपने एक साक्षात्कार में जॉक दरिदां कहते हैं, "मेरी समझ में दर्शन एलिट वर्ग के पठन-पाठन की सामग्री है। कम-से-कम यह साधारण जनता को तो सहज रूप से कभी उपलब्ध ही नहीं रहा। अत: अच्छा हो कि हम दर्शन को उन संस्थाओं में बंडल बनाकर रख दें, जो इनका प्रतिनिधित्व कर सकें, क्योंकि संस्थाओं से बाहर दार्शनिकीकरण की चर्चा प्राय: असंभव है। जरूरत तो है कि इन दार्शनिक संस्थाओं की परंपरा को बचाए रखने की अग्रिम जमानत की। यही तो पारंपरिक लेख को पढ़ने एवं संप्रेषित करने की कला को सुरक्षित रखता है। वस्तुत: दर्शन के द्वारा समाज में कोई तात्कालिक परिवर्तन कभी संभव नहीं हुआ।

यहाँ पर नारीवाद द्वारा उठाए गए प्रश्नों के उत्तर में परंपरावादी प्राय: उस वैदिक काल के स्वर्णिम युग की चर्चा करते हैं, जब स्त्री संस्कृति इतनी दरिद्र नहीं थी। स्वयंवर-प्रथा, नियोग प्रथा, बहुविवाह, आखेट में जाना, युद्ध में जाना, यज्ञशाला में बैठना आदि बहुतेरे कार्य ऐसे थे जोकि स्त्री-शक्ति के परिचायक के रूप में परंपरावादी हमारे सामने रखते रहे हैं, मुझे लगता है-यह कभी आम

औरतों की कहानी नहीं थी। वैसा ही, जैसा कोई इतिहास में या अभी मार्गरेट थैचर, चंद्रिका कुमारतुंग, इंदिरा गांधी या ऐसी दो-चार स्त्रियों के आधार पर सत्ता-मुक्ति के किसी ऐसे स्वर्णिम युग की कल्पना करें, जो कभी आम औरत को उपलब्ध ही नहीं रहा।

नारी के साथ 'वाद' शब्द तो जोड़ दिया गया, लेकिन इस अवधारणा में रची-बसी हुई है- हिंसा, उत्तेजना, वर्चस्व की माँग, अस्मिता के नाम पर टकराहट की चाह, जो जाने-अनजाने स्त्री-मुक्ति के समर्थकों की नीयत पर शक पैदा करने के लिए काफी है। शायद इसीलिए अक्सर स्त्रियाँ अपने बचाव में कहती हैं कि मैं फेमिनिस्ट नहीं हूँ मगर मैं स्त्री-मुक्ति की समर्थक हूँ, निस्संदेह हम स्त्रियों को अपना अधिकार तो चाहिए ही। लेकिन क्या आपने जुलूस में चलती स्त्रियों को देखा है ? बिखरे हुए बाल, फैला हुआ काजल, मिटी हुई बिंदी, टूटी हुई चूड़ियों के कारण लहूलुहान कलाइयों पर सफेद आँचल लपेटती हुई, इन्कलाब के गीत गाती हुई औरतें...शायद एक पूरी दलित शताब्दी की प्रतीक हैं।

व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से लेकर, आचरण तथा तौर-तरीकों के ऐसे अनेक स्तर हैं, जिनके माध्यम से नारीवाद स्थापित व्यवस्था को चुनौती देता है। कम-से-कम आज की स्त्री ने यह तो स्थापित कर ही दिया है कि सामाजिक अत्याचार तथा उपेक्षा से पीड़ित होने के बावजूद उसके सामने एक मानवीय गरिमा से भरपूर भविष्य की संभावना है। उधर पुरुष की वर्चस्ववादी संस्कृति और समाज, स्त्री से अधीनस्थ स्थिति और समर्पण की माँग करती है।

तब क्या सारा दोष पुरुष का है ? स्त्री का कोई दोष नहीं है ? क्या वह इतनी मासूम है ? मैं यह मानती हूँ कि यह व्यवस्था हम स्त्रियों ने नहीं बनाई, लेकिन सच यह भी तो है कि अधिकांश पुरुषों की भी इस व्यवस्था के बारे में अपनी कोई भागीदारी नहीं है। तब क्या पुरुष मात्र को ही 'शोषक' कह दिया जाए ? क्या यह उचित होगा ? उनका अपराध ? सिर्फ इसीलिए कि वे पुरुष-